IJAER/ May-June 2023/Volume-12/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

पर्यावरण संरक्षण में वैदिक संस्कृति और धर्म का योगदान

कमलेश कुमार जोशी
सहायक आचार्य, हिन्दी
SBD राजकीय महाविद्यालय, सरदारशहर, चूरू

मनुष्य को पर्यावरण के प्रति जागरूकता वैदिककाल में प्रर्याप्त मात्रा में थी। पर्यावरण संरक्षण को धार्मिक भावनाओं से जोड़ा था परन्तु आज का मानव इन सब भावनाओं एवं परिस्थितियों को विस्मृत कर बैठा है। अतः हम आज मनुष्य में पर्यावरण के प्रति संरक्षण, संवर्धन के लिए उन सभी भावनाओं को जागृत करना चाहते हैं जो वेद–पुराणकाल से ही लोगों व जन–जन में व्याप्त थी और मानव जीवन सफल था। पर्यावरण संरक्षण में वैदिक विचारधारा के अन्तर्गत इस बात पर बल दिया गया है कि प्रकृति नियमानुसार अपना कार्य करती है, अतः मानव भी प्रकृति के नियम शासन में अपना कर्म करते हुये सम्पन्न बने। ऐसा करने पर प्रकृति तो सुरक्षित रहती है साथ ही प्राकृतिक नियम के अनुसार किये गये कार्य कल्याण एवं शान्ति भी प्रदान करते है। मानव सभ्यता एवं संस्कृति का विकास मानव–पर्यावरण के समाकूलन एवं सामन्जस्य का परिणाम है। आज जब सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण की वर्तमान एवं भविष्यकालिक समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास कर रहा है तब वेदों में प्रतिपादित पर्यावरण शिक्षा को समझने का प्रयास प्रासंगिक है। भारतीय वैदिक संस्कृति और धर्म ही वर्तमान एवं भविष्य की पर्यावरणीय समस्याओ का समाधान प्रस्तुत करने में उपयोगी है।[1] भारतीय संस्कृति मे पर्यावरण के प्रति संवेदनशील जागरूकता वैदिक काल से ही मिलती है।

अथर्ववेद में लिखा है–

माता, भूमिः पूर्त्रोह पृथिव्याः,

अनुवादः– भूमि माता है। मैं पृथ्वी का पुत्र हूं।

वैदिक संस्कृति में ऋषि को प्रकृति के विभिन्न घटक–पर्वत, वन, नदी आदि सहोदराएं जान पड़ते थे। यथा–

गिरयस्ते पर्वतः हिमवन्तौरण्यते पृथ्वी स्योनमत्सु– अथर्व

हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् तथा अन्य, शास्त्रों में धरती को माता कहकर सम्बोधित किया है और प्राकृतिक शक्तियों को वन्दनीय माना गया है। यह भाव केवल इसके लिये अभिव्यक्त किया गया है कि धरती

माता हमारी व सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों कि जननी व पोषक है। पृथ्वी तथा प्राकृतिक शक्तियों के बीच संतुलन पर ही मानव का अस्तित्व निर्भर है। यदि प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाये तो उसका अस्तित्व ही काल ग्रसित हो जायेगा। सम्भवतः यही कारण है कि ऋषियों ने धरती तथा उसके प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का संदेश दिया है। प्रकृति का मानव के साथ जो गहरा सम्बन्ध भारतीय ग्रन्थों में दर्शाया गया हैं वैसा अन्य स्थानों पर मिलना दुर्लभ है[2] वैदिक आर्यो ने सदैव प्रकृति की पूजा की है। द्राविड़ों ने भी प्राकृतिक उपादानों को सदैव आदर की दृष्टि से देखा। वे पत्र, पुष्प, फल चन्दन को पवित्र मानते है। द्राविड़ो की मान्यता है कि हवन से प्रदुषण समाप्त होता है। पुष्प, चन्दन की सुगंध से वातावरण सुरभित होता है। आर्यो ने भी हवन यज्ञ आदि की महता को स्वीकारा है। भारतीय शास्त्रों में विशेषत उपनिषदों में पृथ्वी को परमात्मा का शरीर, स्वर्ग को मस्तिष्क तथा सूर्य और चन्द्रमा को आँखे तथा आकाश को मन माना है। उपनिषदों के अनुसार यदि पृथ्वी परमात्मा का शरीर है तो पेड़–पौधों को काटना एवं जलस्रोतों को प्रदूषित करना, परमात्मा को आघात पहुचाना है। आर्यो की मान्यता रही है कि वृक्ष और जलस्रोत सदैव पूजनीय हैं। वे तुलसी वटवृक्ष, पीपल, बेल वृक्षों को पवित्र मानते थे। परन्तु आज आर्यों की संतान कहलाने वाले हम इन पेड़–पौधों को बेरहमी से काट रहे है। नदियों को कल–कारखानों के अपशिष्ट पदार्थो से प्रदूषित कर रहे हैं। वृक्षों को काट कर हिमालय को बाँझ बनाया जा रहा है। ऐसा हम अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए कर रहे हैं, परन्तु ऐसा करने के फलस्वरूप प्रदूषित पर्यावरण के कारण मानवता के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न किया जा रहा है। भारतीय प्राचीन शास्त्रों ने भी आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु जल को जीवन के अस्तित्व का प्रमुख स्रोत माना है। इनको नष्ट करने व अत्यधिक शोषित करने से केवल पर्यावरण ही दूषित नहीं होगा, वरन मानव समाज का जीवित रहना कष्टप्रद हो जायेगा।[3]

1. **<u>वेद एवं पर्यावरण संरक्षणः–</u>** पुरातत्व की दृष्टि से भारतीय धर्म और संस्कृति का विकसित रूप सर्वप्रथम सैन्धव सभ्यता में दिखाई देता है और साहित्य की दृष्टि से इसका परिपक्व रूप सर्वप्रथम वेदों में मिलता है। विश्व की प्राचीनतम मानव सभ्यता के युग से आधुनिक सभ्यता, संस्कृति एवं वैज्ञानिक आविष्कारों का मुख्यतः आधार भूमण्डल में स्थित प्रमुख चार अवयव–जल, अग्नि, वायु और मृदा है। इन चारों वस्तुओं के विषद ज्ञान को वेद कहते है। वेद चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तथा इनकी चार अलग–अलग संहिताएं है। भू मण्डल में स्थित चार वस्तुओं में से जल के सम्बन्ध में सामवेद में वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में अग्नि के बारे में ज्ञान उपलब्ध है।

   यजुर्वेद में वायु के बारे में तथा अथर्ववेद में मृदा के विभिन्न गुणों से अवगत कराया गया है। इसी कारण जल, अग्नि, वायु और मृदा को क्रमशः सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद कहा जाता है।

   प्रत्येक वेद में जल, अग्नि, वायु और मिट्टी के पारिभाषिक शब्द है और उनसे केवल हमारे इस जल, अग्नि, वायु और मिट्टी का ही तात्पर्य नहीं है वरन इन चारों पदार्थों के आदि स्वरूप की अवयव अवस्था से लेकर स्थूलतम अवस्था तक जितने रूप, विभाग इत्यादि बनते हैं वे सब वेद में निहित हैं।

आज विश्व के बुद्धिजीवी, विद्वान, विचारक एवं दार्शनिक इस तथ्य से सहमत है कि वेद ज्ञान का प्रकाश पुञ्ज है जिनसे, ऐसे अखण्ड, अनन्त अपरिमित ज्ञान का बोध होता हैं, जिनको सृष्टि के ऋषियों–मुनियों ने अपनाया था।

वेद–शास्त्र के विद्वान, वेद को सृष्टि विज्ञान का सम्पूर्ण एवं परिपूर्ण ग्रन्थ मानते हैं। मनुष्य की उन्नति, प्रगति, सभ्यता एवं संस्कृति तथा पर्यावरण संरक्षण का जो विकास हुआ है या भविष्य मे होगा वह वेदों के अध्ययन एवं अनुसंधान से ही सम्भव है।[4]

पर्यावरण की रक्षा के लिए वनस्पति एवं वृक्षारोपण को आवश्यक मानते हुए ऋग्वेद में वनस्पति आरोपण का स्पष्ट आदेश किया गया है।–

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम।

समस्त जड़ व चेतन जगत् में सामन्जस्य उत्पन्न करने एवं पर्यावरण शुद्धि को बनाये रखने के लिए ऋषियों ने यज्ञ करने के लिए मानव मात्र को निर्देश दिये है। एक स्थान पर ऋषि कहता है– देवताओं के निमित आहुति देना आज हमारे लिए कल्याणकारी हुआ है। यह जीव मृत्यु को दूर करने वाली शक्तियों से सम्पन्न हो गए है, हम यज्ञ की प्रशंसा करते है। वेदों में अनेक स्थानों पर पर्यावरण संरक्षण के लिए यज्ञ करने का निर्देश दिया गया है तथा आधुनिक वैज्ञानिकों ने पर्यावरण संरक्षण और विकास हेतु यज्ञ की उपयोगिता को स्वीकार किया है।

इस संसार रूपी वाटिका का स्वामी ब्रह्मा हैं अतः उसे उजाड़ने का अधिकार मानव को नहीं है। आज यदि हमें पर्यावरण संकट से मुक्त होना है तो बुद्धि (ज्ञान) का प्रयोग करकें निराकरण ढूंढना होगा तथा अथर्ववेद में अभिव्यक्त पर्यावरण सम्बन्धी अवधारणाओं का अनुशीलन करके उन्हें अंगीकार करना होगा।

अथर्ववेद में प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रति भी सुस्पष्ट चेतना दृष्टिगत होती है। सांस्कृतिक पर्यावरण के संदर्भ में अथर्ववेद का लक्ष्य मणिबंधन, कत्या तथा अभिचार द्वारा मानव के ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, असूया आदि दुर्भावों को हटाकर मानसिक पाप के ताप का शमन करना, शारीरिक व मानसिक रोगों को हटाना, हिंसक तत्वो को नष्ट करना, व्यक्ति में आत्मविश्वास तथा उत्साह को जाग्रत करना था, जिससे धरती पर मानव दीर्घायु तथा सुस्वास्थ्य को प्राप्त कर सकें। ऋषियों ने पर्यावरण संरक्षण के लिये मानव के आंतरिक भाव, विचारों व मन की शुचिता व शुद्धता पर बल दिया। पाप युक्त मन पर्यावरण संकट का कारण है अतः अथर्ववेद में कहा गया है कि यदि मानव मन पाप प्रवृतियों की और प्रकृत हो जाये तो मन को वहाँ से दूर कर लिया जाना चाहिए। अथर्ववेद में प्राकृतिक प्रदूषण से मानसिक प्रदूषण को अधिक भयंकर माना गया है।

इस प्रकार वेदों में वर्णित पर्यावरण पार्थिक, अन्तरिक्षीय एवं द्यौस्थानीय तत्वों की अन्योन्याश्रित श्रृंखला पर आधारित माना गया है। पार्थिव तत्वों का सम्बन्ध अन्तरिक्ष के तत्वों से तथा अन्तरिक्ष के

तत्वों का अन्तरिक्ष से सम्बन्ध दिखाया गया है, जो एक स्वतः संचालित मानी गई इसे हम पहुँच तंत्र भी कह सकते हैं। इस प्रणाली को सुरक्षा प्रदान करने वाली एक विशाल मोटी परत भी है जो पर्यावरण को सुरक्षित रखती है।[5]

हिन्दू धर्म एवं पर्यावरण संरक्षणः–

हिन्दू धर्म मे प्रकृति को देवी के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। पर्यावरण मात्र भौतिक अथवा लौकिक वातावरण तक ही सीमित नहीं है, अपितु समस्त ब्रह्माण्ड, जिसके निर्माण मे आकाश, पृथ्वी, जल, वायु एवं अग्नि की अहम भूमिका से संबंधित है। वेदान्त दर्शन का प्रमुख मंत्र है आकाश शान्तिः, वायु शान्तिः, अग्नि शान्तिः, पृथ्वी शांन्तिः, सर्वांग शान्ति अर्थात प्रकृति के इन उपादानों की उपासना सर्वत्र शान्ति के लिए की गई है। यदि प्रकृति का अत्यधिक दोहन होता है तो पर्यावरणीय प्रदूषण तो होगा ही साथ ही प्रत्येक प्राणी के जीवन के अस्तित्व को खतरा हो सकता है प्रकृति को वस्तुतः जीवन का पर्याय माना जा सकता है यदि प्रकृति का विनाश इसी गति से होता रहा तो मनुष्य मात्र का जीवित रहना दूभर हो जायेगा। भारतीय ग्रन्थ इस तथ्य का प्रमाण है कि कृष्ण ने गोकुलवासियों को इन्द्र की पूजा की अपेक्षा गोवर्धन पर्वत की पूजा हेतु उद्‌बोधित किया था। आज गंगा, यमुना, संरस्वती हमारी पूजनीय नदियाँ है। दक्षिण एवं उत्तर भारत में आज भी प्रातः काल इनका नाम लेकर स्वयं को धन्य समझा जाता है। जो राष्ट्रीय एकता के प्रतिक है।

भारतीय शास्त्रों, प्रमुखतः वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों, उपजीवीय धार्मिक ग्रन्थों ने सदैव सूर्या, अग्नि, जल, वायु, इन्द्र आदि की पूजा का प्रावधान रखा था। इतना ही क्यों, पीपल, बड़, तुलसी के पेड़,–पौधों को देवतुल्य समझकर उनकी आराधना एवं पूजा की जाती रही है। कल्पवृक्ष तो सभी मनोकामनाओं एवं सिद्धि को प्राप्त करने का सहज साधन है, ऐसी मान्यता हिन्दू धर्म की रही है। अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी को अर्ध्य देने से तथा यज्ञों के माध्यम से आहुति देने से इन्द्र देव प्रसन्न होकर वर्षा करते है, जिससे प्रकृति विकसित, प्रस्फुटित, एवं प्रफुल्लित होकर मानव मात्र की आवश्यकताओं की सम्पूर्ति करती है, जो मनुष्य मात्र के लिए आवश्यक संसाधन है।

भारतीय मानस को जितना श्रीमद्‌भगवतगीता ने प्रभावित किया उतना शायद ही किसी अन्य पुस्तक ने किया हो। गीता को महाभारत का अंग माना जाता है। गीता को उपनिषदों का सार तत्व माना जाता है। गीता में कई श्लोक है जिनमें रूपकों, प्रतिकों, दृष्टांतो एवं सूत्रों के माध्यम से प्रकृति के उपकरणों का वर्णन है। यदि ईश्वर अपना सामंजस्य अपनी रचना के साथ इस सीमा तक करता है तो स्पष्ट है कि इस रचना को नकारा नहीं जा सकता। अर्थात् वनस्पति, नदियों, पहाड़, पक्षी, पशु, जलचर, थलचर और मनुष्य सभी इस प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग है और सबका संरक्षण, पोषण और विकास होना आवश्यक हैं।

गीता मे कर्म को प्रधानता दी गई है।

''कर्मण्ये ..... कदाचित।''

बिना फल की इच्छा किये ही कर्म करना तो अनिवार्य है। क्या हम ऐसे काम, करें जो प्रकृति के प्राणियों को विनाश करने वाले हों, या पर्वतों, वनांचलों, वादियों और नदियों के प्राकृतिक सौन्दर्य और सम्पदा का विनाश करने वाले हो अथवा ऐसे कर्म करें जिससे जीवन में निरन्तर खुशहाली बनी रहे। गीता में यह कथन कि इस लोक में ज्ञान से अधिक पवित्र और कुछ नही है– मनुष्यों के लिए मार्गदर्शक बन सकता है। प्रकृति के साथ मित्रता रखना ही हमारे ज्ञान का प्रमाण हो सकता है।

श्रीमद्भागवत में एक कथा है कि नागराज वासुकि के रहने से वृंदावन में यमुना का जल विषाक्त हो गया था जिसे पी–पीकर ग्वाल–बाल तथा बछड़े मर जाया करते थे। इसलिए कृष्ण ने नागराज को दंड दिया था। और यह निर्देश दिया था कि वह अब अपना जहर यमुना में विसर्जित नहीं करेगा, किन्तु आज कोई कृष्ण नहीं है। यमुना का जल किसी नागराज द्वारा नहीं, बल्कि प्रदूषण से विषाक्त किया जा रहा है, जो पर्यावरण के महत्व को दर्शाता है।[6]

निष्कर्षः–

हमारे वैदिक साहित्य मे इस बात का उल्लेख है कि वैदिक युग में मनुष्य पर्यावरण संरक्षण के लिए हर तरह से संभव प्रयास करता था। प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों व घटकों के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास पैदा करने के लिए उन्हें धार्मिक कर्म–कांडों, हवन, यज्ञों आदि से जोड़ा गया धर्म को जीवन से जोड़कर शिक्षा देना वैदिक काल में प्रभावशाली विधि रही है। पर्यावरण को मानव जीवन का एक अंग मानते थे और हर प्रकार से उसका संरक्षण करते थे और पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाए रखते थे। वैदिक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ऋषियों ने पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन में अपनी मनीषा का सर्वाधिक प्रयोग किया है। समस्त विज्ञान को वैदिक मंत्रों में समाविष्ट करने वाले ऋषियों ने विनाश के भय से वैज्ञानिक प्रयोगों की अपेक्षा आध्यात्मिक विषयों का अधिक मनन किया है। प्रकृति के विरूद्ध तत्वज्ञों ने कभी कोई काम नहीं किया और जिन्होंने किया उन्हें दुष्परिणाम ही भुगतना पड़ा इसके कई उदाहरण हमें वैदिक ग्रन्थों से प्राप्त होते है वैदिक साहित्य के अनुसार प्रत्येक मनुष्य यह अनुभव करे कि उसकी शारीरिक व मानसिक संरचना में प्रकृति के गुण समाए हुआ है। अतः प्रकृति की रक्षा में ही उसकी सुरक्षा निहित है।[7]

हमारी वैदिक प्रार्थना, शान्ति पाठ एवं स्वस्ति वाचन में औषधि, वनस्पति, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश सभी की शान्ति हेतु विनती की जाती है यह सब पर्यावरण शुद्धि से ही संभव हैं, इसी शुद्धि हेतु हमारे पूर्वजों में दैनिक परम्परा डाली। विशिष्ट अवसरों पर यज्ञों के विशाल स्वरूप का आयोजन हमारी संस्कृति की पर्यावरण संरक्षण की वह दीर्घकालीन परम्परा है जिसका प्रभाव आज भी जन–जीवन पर है। परन्तु ऐसा जीवन आज के इस वैज्ञानिक एवं आधुनिक युग में रूढ़िवादी एवं पिछड़ा हुआ माना जाता है।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता इस तथ्य का पृष्ट प्रमाण है कि भारत में सर्व धर्म का समभाव को सदैव आदर की दृष्टि से देखा गया है तथा समस्त धर्मों का एकमात्र शाश्वत सत्य है– 'जीओ और जीने दो' जीओ और जीने दो का सम्बन्ध न केवल मानव समुदाय तक ही सिमित है किन्तु इसका चर–अचर जीव, जड़, प्रकृति व पर्यावरण से भी गहरा सम्बन्ध है। सभी धर्मों में सदा ही मानव मात्र के कल्याण की परिकल्पना निहित है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को स्वीकार है तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' की कल्पना से संजोया है। उन्होंने जड़, जीव, चर, अचर के अस्तित्व के लिए प्रकृति के सभी उपादानों के संरक्षण का आहवान किया है। आज पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें अपने अतीत की और दृष्टि डालनी होगी। अपने पूर्वजों के समान अग्निहोत्र, आहार–विहार, रहन–सहन और जीवन पद्धति को अपनाना होगा, अन्यथा यह असुरक्षित एवं प्रदूषित पर्यावरण हमें निरन्तर विनाश के गर्त में ढकेलता ही रहेगा।[8]

संदर्भः–

1. वैदिक संस्कृति और पर्यावरण संरक्षणः– डॉ. विजय एस सोजीत्रा पृ. सं. – 7,8
2. भारतीय संस्कृति, धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण डॉ. बी.बी. एस कपूर पृ. सं. – 26
3. भारतीय संस्कृति, धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण डॉ. बी.बी. एस कपूर पृ. सं. – 26,27
4. भारतीय संस्कृति, धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण डॉ. बी.बी. एस कपूर पृ. सं. – 28,29
5. वैदिक संस्कृति और पर्यावरण संरक्षणः– डॉ. विजय एस सोजीत्रा पृ. सं. – 16,17,19,29
6. भारतीय संस्कृति, धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण डॉ. बी.बी. एस कपूर पृ. सं. – 30,34,35,36
7. वैदिक संस्कृति और पर्यावरण संरक्षणः– डॉ. विजय एस सोजीत्रा पृ. सं. – 05,08,09
8. भारतीय संस्कृति, धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण डॉ. बी.बी. एस कपूर पृ. सं. – 26,27,38